Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

स्त्री-विमर्श और हिंदी उपन्यास

डॉ. कमलेन्द्र चक्रपाणि
एम.ए., नेट, पी–एच.डी, भारत।

सारांश - अनेक उपन्यास हैं जो स्त्री-विमर्श की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। विपुल मात्रा में रचा जा रहा स्त्री-लेखन इस बात का प्रमाण है कि आज की नारी बदल रहे समय, समाज और उसके विद्रूपों, चुनौतियों के प्रति सजग-सचेत है, जहाँ देह-मुक्ति की आवाज़ उठी है, वहीँ स्त्री-पुरुष संबंधों में मैत्री और सौहार्द के लिए संघर्ष भी है। स्त्री-शोषण, बलात्कार की समस्याएं, आतंकवाद से उपजे विस्थापन, ग्रामीण स्त्रियों की समस्यों और स्वचेतना, रूढ़ियों-बेड़ियों और व्यवस्था की अड़चन से भिड़ती आज की चेतना संपन्न लेखिकाएं स्व को तलाशती यात्रा कर रही हैं। घरेलु से लेकर वैश्विक समस्याओं के प्रति सचेत लेखिकाएं अपनी समृद्ध सोच से साहित्य में अपनी भागीदारी निभा रही हैं।

मुख्य शब्द - स्त्री-विमर्श, उपन्यास, हिन्दी, समय, समाज, स्त्री-पुरुष, स्त्री-शोषण, बलात्कार, आतंकवाद।

बीसवीं शती के अंतिम दौर में हिन्दी साहित्य में हम जिस नारी चेतना का प्रस्फुटन देखते हैं, वह आकस्मिक नहीं अपितु क्रमिक रूप से विकसित हुई है। हिन्दी साहित्य में यह जागृति औपन्यासिक परिदृश्य में यह चेतना अपनी पूरी सार्थकता के साथ परिलक्षित होती है। यह सत्य है कि बीसवीं शती के अंतिम २५-३० वर्षों में भारत में जो स्त्री-चेतना गतिशील हुई, इक्क्सवीं सदी के संधि तक पहुँचते-पहुँचते एक विमर्श के रूप में परिवर्तित हो चुकी है। वर्तमान समय में हिन्दी उपन्यास भी अपनी विधागत शक्ति को पहचानते हुए इस दिशा में अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराते हुए स्त्री-विमर्श को स्वर प्रदान करने में अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

१९७५ ईसवी में मैक्सिको में आयोजित विश्व महिला सम्मेलनों की जो शुरुआत हुई, उसने विश्व भर की नारियों को अपनी आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक भागीदारी में महत्त्वपूर्ण भूमिका के प्रति जागृत किया। इस कड़ी में २० वर्ष पश्चात् १९९५ ईसवी में बीजिंग में आयोजित होने वाले चौथे विश्व सम्मलेन में १८५ देशों तथा लगभग तीन हज़ार गैर सरकारी संस्थाओं ने भाग लिया। इस सम्मलेन की उद्घोषणा में जो

बातें मुख्य रूप में उभर कर सामने आई उनमें 'महिला अधिकार मानवीय अधिकार है' प्रमुख थी और यह भी उच्च स्वर से स्वीकार किया गया कि 'निर्णय लेने के अधिकार के सभी स्तरों पर स्त्री की सहभागिता के बिना विकास व शांति के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। ' १९७५ से १९८५ तक के कालखंड को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक' घोषित किया गया।

इसी पृष्ठभूमि में हिन्दी साहित्य में भी नारी-विमर्श का प्रस्फुटन होता है जिसकी सुन्दर अभिव्यक्ति बीसवीं शती के अंतिम दौर के उपन्यासों में विशेष रूप से महिला रचनाकारों द्वारा लिखे गए उपन्यासों में मिलती है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श को केंद्र मानकर उसपर उपन्यास लिखने वाली नारी लेखिकाओं की सूची काफी लम्बी है जिनमें कुछ के नाम लिए जा सकते हैं- मन्नू भंडारी, राजी सेठी, उषा प्रियम्बदा, चित्र मुद्गल, सुधा अरोड़ा, ममता कालिया, चंद्रकांता,कमल कुमार आदि। इनके अतिरिक्त ८० के दशक के बाद की अलका सरावगी, गीतांजलिश्री, सारा राय, नीलाक्षी सिंह, महुआ मांझी आदि का नाम लिया जा सकता है। इन लेखिकाओं ने स्त्री के विभिन्न स्वरूपों को अपने उपन्यासों के माध्यम से चित्रित किया है। कहीं मातृत्व के बिम्ब से झांकती स्त्री को उपन्यास का मुख्य चरित्र बनाया गया है तो कहीं स्त्री के सतीत्व के दोहन को उकेरा गया है। नारी चेतना की सजगता को भी लेखिकाओं द्वारा उपन्यास में दर्शाया गया है। हिन्दी साहित्य में मातृत्व के व्यापक रूप का चित्रण सभी महिला कथाकारों ने किया है। चाहे वह मन्नू भंडारी (आपका बंटी), मंजुल भगत (नालायक बहु), राजी सेठी (मार्था के देश में एवं गणित ज्ञान), सुधा अरोड़ा (महानगर की मैथिली) हो सब में मातृत्व के महत्व को ही दर्शाया गया है। स्त्री-पुरुषों के संबंधों के घात-प्रतिघात ने दांपत्य संबंधों में दरारें डालनी शुरू कर दीं. नतीजतन समाज में तलाक की स्थितियां आने लगीं. मन्नू भंडारी ने स्थिति पर 'आपका बंटी' उपन्यास लिखा, जहाँ दांपत्य संबंधों में शोषक नीति का विरोध कर तलाक को प्रश्रय दिया गया है, लेकिन स्त्री क्या सचमुच तलाक के बाद मुक्त हो जाती है ? यहाँ एक प्रश्न उठता है, पति-पत्नी के आपसी झगड़ों और तलाक के बाद नए पिता के साथ बच्चों के रिश्तों की परिणति, अक्सर तकलीफदेह समस्याएं पैदा करती हैं। बच्चों की मानसिकता में असुरक्षा, अकेलापन न तो माँ को सुख से जीने देता है और न बच्चों को! 'आपका बंटी' सुकून की त्रासदी है मातृत्व और स्त्रीत्व के बीच द्वंद्व एवं तनाव। वह न तो पूरी तरह माँ बन पाती है और न ही पत्नी। बेटी की टूटन भी कम त्रासद नहीं है।

इसी समय हिन्दी-साहित्य में कई अन्य सशक्त स्त्री स्वर, उभरकर आये। इनमें कृष्णा सोबती का स्वर काफी बुलंद रहा। 'मित्रो मरजानी' और 'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यासों में दैहिक शोषण के विरूद्ध नायिकाएं खुलकर सामने आईं. मित्रो ने एलान सा कर दिया कि पति की अक्षमता का आरोप आप उसकी पत्नी पर नहीं लगा सकते। 'दिलोदानिश' की महक बनो घर में पत्नी और बहार रखैल को पालने वाले रूतबेदार वकील के दोगलेपन पर प्रहार कर एक मुखर सन्देश देती है कि 'रखैल भी एक

नारी है' उसके भी कुछ अधिकार हैं, इसीलिए भूलिए मत। इसी तरह उषा प्रियंवदा ने 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास में घर-बाहर काम करती स्त्रियों के कटु अनुभवों, अंतर्द्वंद्वों और रिश्तों में आते तनाव को संवेदी स्वर दिया तो दिनेश नंदिनी डालमिया ने 'मुझे माफ़ करना' उपन्यास में सामंती परिवारों में मुक्ति के लिए छटपटाती स्त्रियों की यातना, जकड़नों और उनपर थोपे गए बंधनों की अवहेलना कर, पुरुषों की स्वार्थकेन्द्रित मानसिकता पर भी प्रहार किया। तमाम दबावों के बीच उनकी स्त्री हार नहीं मानती. वह कहती है-"मैं दिवास्वप्न नहीं देख सकती, प्रेम करने का अधिकार मुझे नहीं फिर भी सृजन कर रही हूँ, मैं ईश्वर की तरह एक माँ के रूप में।"

नई और पुरानी दौर की लेखिकाओं ने स्त्री-विमर्श को अपने-अपने तरीके से चित्रित किया। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर के उपन्यसों में नारी परिवार के संस्था को चुनौती देती हुई, महत्त्वाकांक्षा के सपनों को संजोती हुई, अपने नैसर्गिक विकास को अवरुद्ध करने वाली सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ती आर्थिक रूप से स्वतंत्रता प्राप्त करती तथा स्त्रियों की पारम्परिक भूमिका से भिन्न खड़ी अपनी अलग ज़मीन तलाशती स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है। ये उपन्यास स्त्रियों की पारम्परिक भूमिका से इतर एक व्यक्ति नारी की प्रतिष्ठा करते हैं जो अपने व्यक्तित्व से अथाह प्रेम करती है और उसे कहीं कुंठित नहीं होने देती। १९९७ में प्रकाशित मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'चाक' ग्रामीण परिवेश में स्त्री चेतना के प्रसार को आख्यायित करता है। उपन्यास की नायिका सारंग की फुफेरी बहन रेशमा की हत्या कर दी जाती है, क्योंकि उसने युवावस्था में विधवा होने के पश्चात् अपने मानव और परिणामतः अपने शरीर की जरूरतों को पूरा करने के प्रयास में गर्भ धारण कर लेती है, जबकि ग्रामीण समाज में विधवा के लिए आज भी बंधन इतने कड़े हैं कि उसे पाश्विक जीवन जीने को विवश होना पड़ता है। सारंग भी उसकी हत्या के पश्चात् उसे इंसाफ दिलाने का जो संघर्ष करती है वह आगे और गति पता हुआ उसके अपने व्यक्तित्व को भी तराशता है।

इसी श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए चित्र मुद्गल ने अपने उपन्यास 'आवा' की नायिका नमिता के माध्यम से एक महत्वाकांक्षी लड़की के संघर्ष को वाणी प्रदान करते हुए नारी चेतना को स्वर प्रदान करती है। उपन्यास की पात्र, सुनंदा की अपने धर्म के बाहर विवाह करने के कारण हत्या कर दी जाती है। महिला अधिकारों की सुरक्षा के लिए संघर्ष करने वाली विमाला बेन सुनंदा की मैयत को न केवल कंधा देती है, अपितु उस पूरी सामाजिक व्यवस्था को ही ललकारते हुए चुनौती देती है, जिसमें निश्छल प्रेम करने वाली स्त्री की हत्या कर दी जाती है। मैयत को कन्धा देते हुए पाटिल शास्त्रों का हवाला देते हुए उन्हें चेताते हैं-"बाई साहब! ये आप क्या कर रही हैं ? आपको मालूम नहीं औरत के लिए मैयत को कन्धा देना शास्त्र सम्मत नहीं ?" वह तो परम्परा और शास्त्रों आदि को भी ललकारने से नहीं चूकती-"कूपमंडूक पुरुषों से हमें सीखना होगा कि स्त्रियों के लिए क्या शास्त्र-सम्मत है और क्या नहीं? निर्दोष स्त्री की हत्या करना शास्त्र-सम्मत है पाटिल? नहीं तो पूछो अपने हृदय से कि क्या हममे से किसी ने

उसके प्राण ले लिए ? मैं कन्धा किसी औरत की मैयत को नहीं दे रही, उस स्त्री-चेतना को दे रही हूँ, जिसका गला घोंटने की कोशिश हत्या के बहाने हुई है।" इस प्रकार की चुनौती देती स्त्री की स्थिति का यथार्थ चित्रण पहली बार इस दौर के इन उपन्यासों में ही इतने मुखर रूप में हुआ है।

यहाँ सुरेंद्र वर्मा का १९९६ में प्रकाशित उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' का जिक्र करना भी आवश्यक हो जाता है। 'मुझे चाँद चाहिए एक महत्त्वाकांक्षी स्त्री की कथा है जिसने प्रारम्भ से ही घरवालों की उक्ति 'हमारे वंश में कभी नहीं हुआ' को चुनौती देते हुए अपनी समकालीन स्त्रियों के द्वंद्व को वह सब भी करने की छूट प्रदान करती है जो आज तक नहीं हुआ था।

वर्षा को परिवार द्वारा दिया गया नाम 'सिलबिल' है। नाम ही परिवार में बच्ची की स्थिति की ओर संकेत करने वाला है परन्तु सिलबिल अपनी इस पहचान को नहीं स्वीकारती। वह अपना नाम बदलती है और यहीं से उसका अपनी पहचान हासिल करने का संघर्ष शुरू हो जाता है। पर वर्षा ने सिलबिल वाला ढुलमुल व्यक्तित्व नोंचकर फेंक दिया। आर्थिक स्वाबलंबन को जीवन की धुरी समझने वाली वर्षा पाने कैरियर को सँवारने की कोशिश में परिवार और परम्पराओं की मान्यताओं के साथ टकराती चलती है। विवाह संस्था को भी वह चुनौती देती है।

वर्षा आज की युवा नारी की प्रतीक पात्र कही जा सकती है जो अपने घर-परिवार, समाज, परिवेश, मूल्य-मान्यताओं, परिचित मित्रों आदि से अपने आपको काटकर सफलता के उच्च शिखर को पाना चाहती है। ऐसा करने में वह जहाँ सबसे टकराती है, वहीं अपनी महत्त्वाकांक्षा की मूल्यधर्मिता में स्वयं भी कटती-जीती चली जाती है। सफलता-असफलता के कुचक्र में वह संवेदना नहीं वरन एक देह या वस्तु मात्र बनकर रह जाती है। समाज को सिरे से नकार और नितांत स्वछन्द आचरण व्यक्ति को एक-दूसरे ही बंधन में जकड़ देता है यानि व्यक्ति एक बंद समाज से निकलकर अपने-आप बंद, अकेला, असहाय और संवेदनशून्य हो जाता है। वर्षा का द्वंद्व उसे इसी अंजाम तक ले जाता है। इस दृष्टि से यह उपन्यास स्त्री-विमर्श का उपन्यास होते हुए भी नारी मुक्ति की कोई सार्थक दिशा की ओर इंगित करता नहीं दिखाई देता है।

पिछले पचास वर्षों में समाज में जो कुछ परिवर्तन हुए हैं उनमें नारी जाति की समानता पुरुषों से उत्तरोत्तर आगे निकल जाती है। अब वह घर की चारदीवारी में बंद रहने वाली गृहस्वामिनी ही नहीं बल्कि समाज के सक्रिय अर्द्धांग के रूप में विकसित तो हो रही है परन्तु अनजाने ही एक लम्बे समय से छली गई है। नारी के प्रति बहुत से व्यवहार उसके विकास के विरुद्ध एक प्रकार के मोहक षड्यंत्र जैसा लगता है। यदि लोग अपने स्वार्थ के लिए षड्यंत्र करना बंद कर दें तो समाज विकसित एवं उन्नत हो सकेगा।

इस प्रकार ऐसे अनेक उपन्यास हैं जो स्त्री-विमर्श की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। विपुल मात्रा में रचा जा रहा स्त्री-लेखन इस बात का प्रमाण है कि आज की नारी बदल रहे समय, समाज और उसके

विद्रूपों, चुनौतियों के प्रति सजग-सचेत है, जहाँ देह-मुक्ति की आवाज़ उठी है, वहीँ स्त्री-पुरुष संबंधों में मैत्री और सौहार्द के लिए संघर्ष भी है। स्त्री-शोषण, बलात्कार की समस्याएं, आतंकवाद से उपजे विस्थापन, ग्रामीण स्त्रियों की समस्यों और स्वचेतना, रूढ़ियों-बेड़ियों और व्यवस्था की अड़चन से भिड़ती आज की चेतना संपन्न लेखिकाएं स्व को तलाशती यात्रा कर रही हैं। घरेलु से लेकर वैश्विक समस्याओं के प्रति सचेत लेखिकाएं अपनी समृद्ध सोच से साहित्य में अपनी भागीदारी निभा रही हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. मुझे चाँद चाहिए, सुरेंद्र वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९६

२. हिंदी उपन्यास, शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मंदिर, वाराणसी, सम्वत २०१६

३. हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल नारायण टंडन / पल्लवी टंडन, क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली

४. समकालीन महिला उपन्यासकारों की अस्तित्ववादी चेतना, डॉ. छवि, एस.एस. प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१६